JOURNAL OF ACADEMIC RESEARCH
An International Multidiciplinary Peer Reviewed (Refereed) Journal, **Vol.6,Jan to june 2019 ISSN: 2393- 798X, EISSN: 2395-1311, I2OR Publication Impact Factor (PIF) 3.015**

भारत में जल प्रबंधन के पारम्परिक तकनीक

Dr. Chandrashekhar Mishra*

शोध सारांश :

प्रस्तुत शोध आलेख में भारत में पारम्परिक जल प्रबंधन के तकनीकों का गहन विश्लेषण कर आधुनिक युग में इसकी प्रासंगिकता का परीक्षण का प्रयास किया गया है। भौगोलिक विविधता के कारण भारत के कई क्षेत्र बाढ़ तथा सूखा से प्रभावित रहा है। प्राचीन काल में इन समस्याओं के समाधान हेतु अपनाए गए उत्कृष्ट जल प्रौद्योगिकी तथा जल संचयन के पारम्परिक तरिकों का विश्लेष्णात्मक अध्ययन किया गया है। आधुनिक युग में जल–संकट एक वैश्विक समस्या बन गई है। जिसका निवारण प्राचीन जल–प्रबंधन प्रौद्योगिकी से ही संभव है।

मूल बिन्दू : जल–संरक्षण, कुआँ, धौलावीरा, श्रृंगवेरपुर, बावड़ी, जल–संकट

प्रस्तावना :

अतीत के प्रत्येक कालखण्ड तथा विष्व प्रत्येक क्षेत्रों में विकसित संस्कृति की पहली आवष्यकता **'जल'** रही है। भारतीय उपमहाद्वीप में जल प्रबंधन का इतिहास काफी पुराना है। मानव विकास का आरंभिक अवस्था लगभग 3.5 करोड़ वर्ष पुराना माना जाता है। इस समय जलवायु परिवर्तन के कारण जंगलों का त्रास तथा मैदानों का विकास हो रहा था। भारत में मानव सम प्राणी का प्राचीनतम साक्ष्य 1.20 करोड़ वर्ष पुराना है। प्रारंभ से ही मानव अपना आवास ऐसी जगह बनाता है, जहाँ जलश्रोत मौजुद हों। नर्मदा नदी घाटी से आखेटक–संग्रहकर्ता समुदाय के हजारों वर्षों तक निवास के साक्ष्य मिले हैं। भारतीय उपमहाद्वीप के पश्चिमोत्तर में अवस्थित सुलेमान एवं किरधार श्रेणी के आस–पास के क्षेत्रों से 8000 वर्ष पूर्व के गेंहू तथा जौ उपजाने के साक्ष्य मिले हैं। कृषि उत्पादन जल प्रबंधन के बिना संभव नहीं रहा होगा। विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं का विकास नदी घाटी क्षेत्रों में ही हुआ है। मिश्र की सभ्यता नील नदी के किनारे, मेसोपोटामिया की सभ्यता दजला और फुरात नदियों के बीच, चीन की सभ्यता हवांगहो नदी के किनारे, विकसित हुई। हेरोडोटस ने नील नदी को मिश्र के लिए वरदान माना। भारतीय उपमहाद्वीप के पश्चिमोत्तर वृहद क्षेत्रों में विकसीत विश्व की प्राचीन सभ्यताओं में से एक सिंधु घाटी सभ्यता का विकास भी हिमालय से उद्‌गम होने वाली प्रमुख नदियों के किनारे हुआ। विष्व की सभी प्राचीन सभ्यताओं से जल प्रबंधन तथा उसके सतत उपयोग के लिए प्रौद्योगिकी के उपयोग का साक्ष्य मिलता है। मिश्र की भौगोलिक अवस्थिति के कारण यहाँ जल–श्रोत सीमित मात्रा में उपलब्ध थे। विवेकपूर्ण जल–प्रबंधन के बिना मिश्र की महान सभ्यता का निर्माण संभव नहीं था। भारतीय उपमहाद्वीप में विकसित सिंधु घाटी सभ्यता की जलवायु अर्ध–षुश्क थी। यहाँ के विभिन्न महत्वपूर्ण क्षेत्रों से उत्कृष्ट जल–प्रबंधन के साक्ष्य मिले हैं। नहरों का निर्माण कर नदियों के जल को कृषि–क्षेत्रों तक पहुँचाया जाता था। सिंधु घाटी सभ्यता का अफगानिस्तान में स्थित एक महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र शोर्तुघई के पास कोरचा नदी पर नहर के साक्ष्य मिले हैं। सिंधु घाटी सभ्यता के विभिन्न स्थलो से कुएं के साक्ष्य मिले हैं। मोहनजोदड़ो से 700 कुओं के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। कुंआँ भूमिगत जल–प्रयोग का प्राचीनतम साक्ष्य है। औपनिवेशिक काल से पूर्व तक कुआँ जल–संयचन का सबसे लोकप्रिय माध्यम था। विभिन्न कालखण्डों में राज्यों के द्वारा तथा कभी–कभी निजी तौर पर भी कुएं का निर्माण होता था। मौर्य युग से छल्लेदार कुएं के साक्ष्य मिले हैं। कुआँ तथा तालाब भूमिगत जल–स्तर को बनाएं रखने में सहायक होता है। वर्षा–जल इसमें संचालित हो कर जल–संकट निवारण में महत्वपूर्ण योगदान करता है

धौलावीरा नगर में जल–प्रबंधन :

जल–संरक्षण का सबसे उत्कृष्ट उदाहरण सिंधु घाटी सभ्यता का एक महत्वपूर्ण केन्द्र धौलावीरा नगर था। यह वर्तमान गुजरात राज्य के कच्छ जिला में अवस्थित **'खडीर बेट'** गांव के पास अवस्थित है। 10,000 वर्ष पूर्व आए विवर्त्तनिक गतिविधियों के कारण संभवतः समुद्रं के पीछे हटने के कारण धौलावीरा शहर चारों ओर खारेपानी से घिरा हुआ था। खडीर बेट द्वीप भारत में अवस्थित सबसे बड़ा अंतर्देशीय द्वीप है। भू–वैज्ञानिक सर्वेक्षण से इस द्वीप का लगभग 3000 वर्षों तक समुंद्र के पानी में 10 मीटर गहराई में बने रहने के साक्ष्य मिले हैं। सैंधवकाल में धौलावीरा व्यापारिक गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र रहा होगा। यह बंदरगाह नौवहन जल निकाय के तौर पर खाड़ी देषों के साथ व्यापार में सहायक रहा होगा। वर्त्तमान समय में वर्षा ऋतु में इस द्वीप का सम्बंध मुख्य भूमि से कट जाता है। 1967 में खडीर बेट द्वीप के पश्चिमोत्तर सीमा पर धौलीवीरा की खोज हुई। खारेपानी से घिरें रहने तथा अल्पवर्षा क्षेत्र होने के कारण जल प्रबंधन के बिना इतने बड़े शहर का विकास संभव नहीं था। पुरातात्विक सर्वेक्षण में यहाँ से जलाशयों की व्यापक श्रृंखला प्राप्त हुई है। डॉ0 रविन्द्र सिंह बिश्ट, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के सेवानिवृत संयुक्त महानिदेशक के अनुसार, जलाशयों की व्यापक श्रृंखला विशेष रूप से दक्षिण–पश्चिम और उत्तरी शहरों में उपलब्ध हैं, इन्हें शहर की सुरक्षा दीवारों के अंदर बनाया गया था। यह शहर मनसर तथा मनहर नामक दो मानसून नहरों के बीच बसा था, शहर का भू–भाग दक्षिण की ओर ढलानदार था। अतः यहाँ जलाशयों तथा कृत्रिम बांधों का निर्माण संभव था। वर्षा–जल संरक्षण के लिए चट्टनों को काट कर विषाल जलाषयों की एक विकसित जल–प्रणाली का विकास किया। 2.5 लाख धनमीटर क्षमता वाली 16 जलाशयों का निर्माण किया गया। जिससे शहर की 1,5,000 आबादी के उपयोग हेतु प्रतिदिन 54 लीटर जल उपलब्ध हो पाया होगा। डॉ0 रविन्द्र सिंह बिष्ट, के अनुसार हड़प्पावासियों को जल अनियांत्रिकी

***Asst. Prof. Deptt. Of History , Udayanacharya Vidyakar Kavi College, B.N. Mandal University, Madhepura**

का विशेष ज्ञान था। उन्हों ने धौलावीरा शहर में जलतंत्र की योजना इस प्रकार बनाई थी कि वर्षा–जल का एक बूँद भी बर्बाद न हो। हर बूँद को जलाशयों में संचालित किया जाता था। जलाशय में लोगों के पहुँचने के लिए सीढ़ियाँ बनाई गई थी। सूखे वर्षों में पानी की उपलब्धता सुनिश्चित करने हेतु जलाशयों के अंदर कुण्ड का निर्माण किया गया था। हड़प्पावासियों को जलाशय से शहर तक जल पहुँचाने के लिए प्राकृतिक ढलानों के उपयोग की जानकारी थी। इसके लिये कृत्रिम नालियों का प्रयोग किया जाता था। यहाँ से एक विशाल बावड़ी का भी साक्ष्य मिला है। जो 73.4 मीटर लम्बी, 29 मीटर चौड़ी तथा 10 मीटर गहरी है। दुर्ग के ऊपरी भाग से एक विस्तृत जलनिकास प्रणाली का प्रमाण मिला है। ताकि बाढ़ से नगर की सुरक्षा हा पाए और अतिरिक्त जल जलाशयों में संचित हो सके।

धार्मिक ग्रंथों में जल संरक्षण :

वैदिक ग्रन्थों में नदियों की स्तुति तथा उसके महत्व का वर्णन मिलता है। ऋगवेद में सुशिरा तथा सूरमी शब्दों का प्रयोग कृत्रिम जलमार्गों के लिए किया गया है। अंस्त्रकोश तथा अश्मचक्र शब्द का प्रयोग कुओं से जल खींचने वाले यंत्रों के लिए किया जाता था। रामायण, महाभारत, बौद्ध धार्मिक ग्रंथों में जल तथा जलश्रोतों के महत्व का विस्तृत वर्णन मिलता है। पुराणों में महत्वपूर्ण नदियों को देवी की संज्ञा दी गई है। भारतीय परम्पराओं में जलश्रोतों के निर्माण तथा मरम्मत को धार्मिक महत्त्व दिया गया है।

बौद्ध ग्रंथों में रोहिणी नदी के जल बँटवारे के लिए शाक्य तथा कोलियों के बीच युद्ध की नौबत आने का वर्णन मिलता हैं, **(प्रो0 गिरीश चन्द्र चौधरी, भगीरथ, जनवरी–मार्च, 2016),** गोरीकुण्ड, राजगृह कुण्ड, मणिकरण कुण्ड, वृद्धताल अपने चिकित्सकीय गुणों के लिए प्रसिद्ध है। पाकिस्तान के पेशावर के पास स्थित अरा से प्राप्त कूप पर खरोष्टी लिपि में इसके धार्मिक महत्त्व का वर्णन मिलता है। सुश्रुत संहिता में कूप के जल को चिकित्सकीय गुणों से भरपूर तथा पित्तकारक और भूख बढ़ाने वाला बाताया है।

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में कूप, तालाब और नहर निर्माण कार्य शासकों हेतु आवश्यक बताया गया है। मौर्य काल में नदियों पर बाँध के द्वारा जलाशयों के निर्माण का साक्ष्य मिलता है। अशोक के अभिलेखों से कुआँ तथा महत्वपूर्ण मार्गों पर प्याऊ निर्माण का उल्लेख मिलता है। चन्द्रगुप्त के काल में जूनागढ़ राज्य का गर्वनर प्रश्पगुप्त ने नदी पर बाँध बना कर 'सुदर्शन' नामक झील का निर्माण किया। इस झील की देख रेख के लिए अधिकारी नियुक्त होते थे। समय–समय पर विभिन्न शासकों के द्वारा इस झील की मरम्मत करवाई की गई।

श्रृंगवेरपुर में जल अभियांत्रिकी :

रामायण में वर्णित श्रृंगवेरपुर (इलाहाबाद से 35 किलोमीटर) नामक नगर का उत्खन्न डॉ0 बी0 बी0 लाल, के निर्देशन में 1977–85 ई0 में हुआ। यहाँ से लगभग प्रथम शताब्दी ई0 पू0 से पहले के नवाचारी विधियों द्वारा जल संरचनाओं का निर्माण कर गंगा नदी के जल का प्रयोग किया जाता था। यहाँ से वृहद आयताकार ईटों के टैंकों की श्रृंखला का साक्ष्य मिला है। वर्षा ऋतु में इन टैंकों में गंगा का जल संचयित कर लिया जाता था जिससे इसकी ऊँचाई में 7–8 मीटर तक वृद्धि हो जाती थी। अधिक ऊँचाई के कारण पानी पास के तालाब तक पहुँच जाता था। इस तालाब से 11 मीटर लम्बी तथा 5 मीटर गहरी नहर द्वारा पानी टैंकों में संग्रहित किया जाता था। इस जल तंत्र में निकास नली भी जुड़ा हुआ था, जिससे अतिरिक्त पानी नदी में वापस चला जाता था। श्रृंगवेरपुर हाइड्रोलिक प्रणाली का प्रयोग 'स्वच्छ गंगा' मिशन के लिए भी किया जा रहा है।

बाँध बनाने का प्राचीन साक्ष्य तमिलनाडु स्थित कल्लनई बाँध से प्राप्त होता है। इसका निर्माण करिकाल चोल के द्वारा दूसरी शताब्दी में करवाया गया था। इसका निर्माण पत्थरों से किया गया है। बाँध निर्माण के उद्देश्य बाढ़ नियंत्रण तथा सूखा के समय के लिए जल संचय था। पैक टैम केकारण पानी के रिचार्ज से उसके भू–जलस्तर में वृद्धि होती है। आरंभिक काल में इस बाँध से 69 हजार एकड़ भूमि सिंचित होती थी अब इसका क्षेत्र और विस्तृत हो गया है।

मध्यकाल में कई किलों का निर्माण हुआ। प्राचीनकाल की अपेक्षा इस काल में युद्ध तकनीक में वृद्धि हुई, जिस कारण कई बार शासकों को युद्ध के दौरान महीनों तक किले के अंदर ही निवास करना पड़ता था। बाहर से संपर्क टूट जाने के कारण रसद और जलापूर्ति हेतु पूर्णतः किले पर निर्भर होना पड़ता था। अतः किले के अंदर जल–प्रबंधन का विशेष ध्यान रखा जाता था। अरावली पहाड़ियों में स्थित चित्तौड़गढ़ का किला जल–प्रबंधन का श्रेष्ठ उदाहरण है। इस किला की क्षमता 50,000. सैनिकों को 4 वर्ष तक जल उपलब्ध कराने की थी। इसमें 84 जलश्रोत मौजुद थे।

भारतीय परम्पराओं में बावड़ियों का महत्व :

बावड़ी वर्षा जल संग्रह की एक महत्त्वपूर्ण युक्ति है। राजस्थान, गुजरात जैसे अल्प वर्षा वाले क्षेत्रों के लिए ये काफी उपयुक्त है। आठवीं–नौवीं शताब्दी में राजस्थान में चांद बावड़ी का निर्माण किया गया। संभवतः इसका निर्माण निखुम्बा वंष का शासक चंदा ने करवाया था। गुजरात तथा राजस्थान में ती हजार से भी अधिक बावड़ियाँ पाई गई है। मध्यकालीन किलों में भी बावड़ियों का निर्माण जल का विवेकपूर्ण उपयोग हेतु किया जाता था। गुजरात में स्थित 'रानी की वाव' जल अभियांत्रिकी तथा वास्तुकला कला संगम है, जिस कारण इस स्थान को यूनेस्को के वर्ल्ड हैरिटेज साइट के तौर पर संरक्षित किया गया है। इसका निर्माण रानी उदयमति ने ग्यारहवीं शताब्दी में अपने स्वर्गीय पति राजा भीमदेव प्रथम के स्मरण में करवाया था। यह बावड़ी (64ग20 मीटर) मूलतः सातमंजिला थी। इस बावड़ी में सीढ़ियाँ संकरी बनाई गई है, ताकि पानी का अल्प मात्रा ही भांप बन कर उड़ सके।

औद्योगिक क्रांति के पश्चात् पंपों तथा पाईपों का उपयोग बढ़ जाने के कारण बावड़ियों का ह्रास होने लगा। की पाकार आकृति होने के कारण भूमिगत तथा वर्षा जल संरक्षण में बावड़ियाँ महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अतः बावड़ियों को पुनःजीवित कर जल–संकट को कम किया जा सकता है।

भारत में 13 लाख कृत्रिम झील तथा तालाब थे। भोपाल स्थित बड़ा तालाब का निर्माण राजा भोज द्वारा ग्यारहवीं शताब्दी में किया गया था। इस तालाब से शहर के चालीस प्रतिशत आबादी को जलापुर्ति होती है। वर्त्तमान समय में यह तालाब अपनी जैव–विविधता के कारण नमभूमि क्षेत्र में विकसित हो गया है। राजस्थान के शुष्क क्षेत्रों में मिट्टी तथा चट्टानों की सहायता से निर्मित अर्द्धचन्द्राकार बड़े बाँधों (जिसे जोहड़ की संज्ञा दी जाती है) का उद्देश्य वर्षा जल के बहाव को रोकना था। यह भूमि में जल रिसाव में वृद्धि कर भूमिगत जलस्तर बनाए रखने में सहायक होता था। राजस्थान में 1500ई0 पू0 से जोहड़ के निर्माण का साक्ष्य मिलता है।

स्थानीय निवासियों द्वारा जल–संरक्षण :

कच्छ के मालधारी समुदाय 'टपतकन विधि' द्वारा वर्षा जल संरक्षित करते थे। पूर्वोत्तर क्षेत्रों में बाँस की विशिष्ट जाल बना कर इसका प्रयोग जल को एक निश्चित जगह पर संग्रहण के लिए पहुँचाया जाता था। अण्डमान द्वीप पर जरवा जनजाति भी बाँस की सहायता से वर्षा–जल एक गढ्ढे या बड़े कुएं में संचयित करते हैं। बिहार तथा बंगाल के क्षेत्रों में अहार नामक संरचना नदियों तथा वर्षा–जल संग्रहण द्वारा बाढ़ तथा सूखाड़ दोनों को कम करने में मददगार होता था। राजस्थान के शुष्क क्षेत्रों में वहाँ के पालीवाल ब्राह्मणों ने खारीन नामक संरचना का विकास जल संग्रहण के लिए किया। मध्य प्रदेश की काली मिट्टी के क्षेत्रों में 'हवेली विधि' द्वारा वर्षा–जल संग्रहित कर उसका प्रयोग कृषि कार्यों में किया जाता था। राजस्थान में कुंइ, बेरा, कुंडी, टंकी इत्यादि जल संरक्षण की महत्तवपूर्ण युक्तियाँ था, जिससे वर्षा–जल संग्रहण के साथ ही सूखे के समय पेयजल उपलब्ध रहता था।

अध्ययन उद्देश्य :

- प्रस्तावित शोध अध्ययन में जल संरक्षण तथा प्रबंधन के ऐतिहासिक तकनीकों को समझने का प्रयास किया गया है।
- प्राचीन तथा पारम्परिक जल–प्रबंधन प्रणाली की सहायता से आधुनिक जल–संकट निवारण में सहायता मिलेगी।
- आधुनिक जल–संकट के वास्तविक तथ्यों को समझने में आसानी होगी।
- प्राचीन युक्तियों का प्रयोग नदियों की स्वच्छता योजनाओं में भी किया जा सकता है।
- पारम्परिक वर्षा–जल, संग्रहण प्रणाली के द्वारा शुष्क क्षेत्रों में पेयजल उपलब्ध कराया जा सकता है।
- जल संकट दूर कर खाद्यान्न उत्पादन में भी वृद्धि की जा सकती है।

साहित्य सर्वेक्षण :

जल प्रबंधन के पारम्परिक प्रणालियों पर विद्वानों, शोधार्थियों द्वारा लिखे गए लेखों तथा पुस्तकों का गहन विश्लेषण किया गया है। 'महेश रंगाराजन' की पुस्तक 'भारत में पर्यावरण के मुद्दे एक संकलन' में 'मयंक कुमार' द्वारा लिखित लेख 'पारम्परिक जल प्रबंधन और परिस्थितिकी : मध्यकालीन राजस्थान पर एक नजर' में शुष्क प्रदेश राजस्थान में वर्षा जल संग्रहण तथा जल प्रबंधन के कई पारम्परिक युक्तियों का विस्तृत अध्ययन किया गया है। डॉ0 मयंक कुमार का लेख 'जल संसाधन' भारत में परिस्थितिकी एवं पर्यावरण का इतिहास में स्थानीय लोगों द्वारा जल प्रबंधन का विस्तृत वर्णन किया गया है। राज्यसभा टेलीविजन तथा विज्ञान–प्रसार द्वारा प्रसारित कार्यक्रम बिल्डिंग ब्लॉक्स ऑफ भारत' के एपीसोड 02, 03 तथा 04 में प्राचीन भारत में उपस्थित जल–प्रौद्योगिकी का अध्ययन किया गया है।

अध्ययन प्रविधि :

प्रस्तुत शोध अध्ययन द्वितीयक स्त्रोंतो के माध्यम से ऐतिहासिक, नवाचार, विश्लेष्णात्मक, तुलनात्मक तथा नवीन पद्धतियों को अपनाते हुए शोध लेख में मौलिकता प्रदान करने का प्रयत्न किया गया है। शोध कार्य हेतु आवश्यक सामग्री प्राचीन पुस्तक, विद्वानों के लेख, इंटरनेट, टेलीविजन, पुरातत्व विभाग तथा सरकारी प्रतिवेदनों के गहन विश्लेषण किया गया है।

निष्कर्ष :

भारत में प्राचीन काल से ही जल संचयन संरक्षण तथा प्रबंधन की कई प्रणालियां मौजुद रही है। जल प्रबंधन प्रणालियों में स्थानीय विविधता है, जो वहाँ की भौगोलिक तथा जलवायुगत जरूरतों को ध्यान में रखते हुए अपनाई गई थी। इन प्रणालियों के द्वारा राजस्थान, गुजरात तथा अन्य सुखग्रस्त इलाकों में जल उपलब्ध कराया जाता था। ये प्राचीन प्रणालियों का प्रयोग आधुनिक युग में भी जल संकट दूर करने हेतु किया जा सकता है।

संदर्भ सूची :

- महेश रंगाराजन, भारत में पर्यावरण के मुद्दे एक संकलन, पृष्ठ संख्या – 58
- डॉ0 मयंक कुमार, जल संसाधन, भारत में परिस्थितिकी एवं पर्यावरण का इतिहास, इग्नू, एम0 एच0 आई0 – 8, खण्ड – 4
- प्रो0 रवीन्द्र कुमार, संसाधन का उपयोग और मानव समाज, भारत में परिस्थितिकी एवं पर्यावरण का इतिहास, इग्नू, एम0 एच0 आई0 – 08, खण्ड – 2
- राज्यसभा टेलीविजन, बिल्डिंग ब्लॉक्स ऑफ भारत, एपीसोड – 02,03 एवं 04
- इरफान हबीब, द इण्डस सिविलाईजेषन
- जी0 सी0 पांडे, वैदिक संस्कृति
- जे0 पी0 जोषी, आर0 एस0 बिष्ट, इण्डिया एन्ड इण्डस सिविलाईजेषन
- प्रो0 गिरिष चनद्र चौधरी, जल–भारतीय प्राचीन ग्रंथों से कुछ तथ्य, इण्डिया वाटर पोर्टल
- डॉ0 डी0 डी0 ओझा, प्राचीन भारत में जल संसाधनों का प्रबंधन, इण्डिया वाटर पोर्टल
- वीणा बाना व राजीव बना (2000) : पर्यावरण शिक्षा रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर
- भारत सरकार (1986) : नेशनल पालिसी आन एजूकेशन, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, शिक्षा विभाग, नयी दिल्ली।